Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor: 4.081
Volume-12, Issue-3, December-2018 www.researchguru.net

माखनलाल चतुर्वेदी के लेखन में सामाजिक जीवन : एक विवेचना

प्रियंकर लारिया
शोधार्थी इतिहास विभाग डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.) ई–मेल lariya.2013@gmail.com

शोध सारांश : माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य के प्रख्यात कवि, लेखक, कहानीकार एवं पत्रकार के साथ ही देश के प्रसिद्ध संग्राम सेनानी भी रहे हैं। उन्होनें अपने साहित्य लेखन के माध्यम से ब्रिटिश शासन की नीतियों और कार्यों का विरोध किया जिससे विदेशी हुकुमत प्रभावित हुई। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से विदेशी सत्ता को इतना अधिक प्रभावित किया कि उसकी ख्याति हमें आज भी देखने को मिलती है। माखनलाल चतुर्वेदी अपने समकालीनों व आगे आने वाले लेखकों, साहित्यकारों, रचनाकारों, के लिए देशभक्ति एवं आदर्श की प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं। माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी लेखनी के माध्यम से ब्रिटिशकालीन भारत एवं स्वतंत्रोत्तर काल में स्थानीय समाज में विद्यमान विषमताओं तथा असमानताओं का विरोध किया।

कुंजी शब्द : सामाजिक जीवन, सामाजिक प्रगति, गतिशीलता, दैनिक जीवन, सामाजिक परिवेश।

हिन्दी साहित्य में ऐसे कई विद्वान हुये हैं जिन्होनें अपने सृजन कार्य से देशकाल को इतना प्रभावित किया है जिसकी ख्याति आज भी हमें देखने को मिलती है, ऐसे ही एक प्रसिद्ध विद्वान माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी जगत के विख्यात साहित्यकार, प्रखर पत्रकार तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहे हैं। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में यथा कविता, कहानी, नाटक तथा निबंधों के माध्यम से उन्होनें तत्कालीन भारत की परतंत्रता, किसानों तथा मजदूरों की व्यथा, वंचित तबकों की पीड़ायें तथा महिलाओं की दशा एवं स्थिति को बखूबी दिखलाया है। माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म बाबई, होशंगाबाद में 4 अप्रैल, 1889 को हुआ था। उनके पिता पं. नंदलाल चतुर्वेदी शिक्षक थे और माता का नाम सुंदरीबाई था। उनकी षादी 1904 में ग्यारसीबाई के साथ हुई। उस समय माखनलाल की उम्र 14 वर्ष तथा उनकी पत्नी की उम्र 9 वर्ष थी। सन् 1914 में उनकी पत्नी का निधन हो गया। उनकी आरंभिक शिक्षा छिदगाँव में हुई जिस प्राइमरी स्कूल में पिता ने प्राथमिक शिक्षा पायी थी, उसी स्कूल में उनका दाखिला कर दिया गया। वहाँ से उन्होंने सन् 1901 में प्राइमरी परीक्षा उत्तीर्ण की।[1] सन् 1905 में, प्राइमरी परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, इन्होंने 'प्राइमरी टीचर्स ट्रेनिंग' की परीक्षा जबलपुर केन्द्र से उत्तीर्ण की। सन् 1907 में प्रयाग में षिक्षा ग्रहण करते हुए आपने पं. मदनमोहन मालवीय की स्वीकृति से अभ्युदय के कार्यालय में सम्पादन कार्य षुरू कर दिया था और पत्रकारिता की दीक्षा ली।

प्रारंभ में कवि अपनी रचनाओं में माखनलाल चतुर्वेदी नाम ही दिया करते थे, 'सुबोध–सिन्धु' के हिन्दी संस्करण में कवि ने सन् 1912 में 'शक्ति पूजा' पर लेख लिखा था।[2] यह लेख खंडवा से प्रकाषित हुआ। जिसके कारण पुलिस द्वारा राजद्रोह का आरोप लगाया गया किन्तु श्री माणिकचंद जैन की बुद्धिमानी और कवि की कार्यकुशलता एवं सावधानी के कारण यह आरोप गलत सिद्ध हुआ। तब से वह 'श्रीगोपाल', 'भारत–सन्तान', 'कुछ नहीं', 'भारतीय', 'सुधार–प्रिय', 'पशुपति', 'नीति–प्रेमी', 'एक विद्यार्थी', 'एक निर्धन विद्यार्थी', 'एक भारतीय प्रजा', 'एक नवयुवक', 'तरूण भारत', 'एक प्रान्तीय वाणी', 'एक उच्च शिक्षित', 'एक भारतवासी', 'श्रीयुत' नवनीत', 'श्री विश्वव्याप्त', 'श्री चंचरीक', 'श्री शंकर', 'श. रा. श.', 'क्ष. त्र. ज्ञ.', 'वनवासी', 'वनमाली', 'एक भारतीय आत्मा', जैसे चित्र–विचित्र नामों से लिखते रहे हैं।

1913 में माखनलाल चतुर्वेदी ने कालूराम गंगराड़े के सहयोग से 'प्रभा' का संपादकीय दायित्व भी संभाल लिया। 'प्रभा' के माध्यम से वे स्वामी श्रद्धानंद, विष्णुदत्त षुक्ल, सैयद मीर अली मीर और जगन्नाथ प्रसाद आदि के संपर्क में आये। मणिकचन्द्र जैन और कालूराम गंगराड़े ने माखनलाल चतुर्वेदी को 'प्रभा' के वास्तविक संपादक का दायित्व सौंपा। 'प्रभा' ने षीघ्र ही माखनलाल चतुर्वेदी को पं. माधवराव सप्रे, गणेष शंकर विद्यार्थी, कामताप्रसाद गुरू, महावीर प्रसाद द्विवेदी, महात्मा मुंषीराम रायबहादुर, पं. विष्णुदत्त षुक्ल जैसे उस युग के ख्यातिलब्ध लोकनायकों में षामिल कर दिया।[3] अप्रैल 1919 में पंडित माधवराव सप्रे और पं. विष्णुदत्त षुक्ल ने जबलपुर से 'कर्मवीर' के प्रकाषन का निर्णय लिया और उसके संपादन का दायित्व माखनलाल को सौंपा। 11 जनवरी, 1920 को 'कर्मवीर' का पहला अंक प्रकाषित हुआ। उल्लेखनीय है कि गांधी जी के कर्मषील तपस्वी जीवन को आदर्ष बनाकर माखनलाल ने इस पत्र का नाम 'कर्मवीर' रखा। कर्मवीर उनकी विचार अभिव्यक्ति का सषक्त माध्यम बन गया। कर्मवीर के नए व्यवस्था मंडल से मतभेदों के चलते उन्होंने नबम्वर 1922 में कर्मवीर का संपादकीय दायित्व छोड़ दिया। इसके पूर्व 1921 में राजद्रोह के अपराध में उन्होंने एक वर्ष जेल की सजा काटी थी। अंततः जबलपुर से 'कर्मवीर' का प्रकाषन बंद हो गया। 4 अप्रैल, 1925 से माखनलाल ने अपनी कर्मभूमि खंडवा से 'कर्मवीर' का पुनः प्रकाषन आरंभ किया और सन् 1959 तक इसका संपादकीय दायित्व निभाते रहे।

माखनलाल चतुर्वेदी की साहित्यिक रचनाओं का फलक बहुत व्यापक था। उत्कृष्ट साहित्यिक अवदान के लिए उन्हें अनेक सम्मानों एवं पुरस्कारों से नवाजा गया। 1943 में 'हिम किरीटनी' कविता पुस्तक पर प्रतिष्ठित 'देव पुरस्कार' प्राप्त हुआ। 1947 में हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया गया। 1954 में उनकी कविता पुस्तक 'हिमतरंगिनी' पर 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' दिया गया। उल्लेखनीय है कि यह पुरस्कार प्राप्त करने वाले वे हिन्दी के पहले रचनाकार थे। सागर विष्वविद्यालय ने 18 दिसंबर 1959 को डी. लिट्. की मानद उपाधि प्रदान कर माखनलाल चतुर्वेदी के विराट कृतित्व का सम्मान किया।[4] 26 जनवरी 1963 को भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' अलंकरण से विभूषित किया। चतुर्वेदी जी ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व की सतरंगी छटा से अपने समय के साहित्य सृजन, राजनीति, सामाजिक पुनर्जागरण आदि का सफल नेतृत्व किया। माखनलाल चतुर्वेदी ने रचनाषीलता के बल पर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को गति प्रदान की। इस मोरचे पर उन्होंने चमत्कारक सफलता अर्जित की। साहित्य और राजनीति दोनों ही क्षेत्रों में युगधर्म के प्रति उन जैसा सजग व्यक्ति मिलना मुष्किल है। 30 जनवरी, 1968 को यह महामानव संसार से विदा हो गया और अपनी संघर्षमय जीवन–यात्रा के अमिट पदचिन्ह और उत्कृष्ट सृजनात्मक कृतित्व की अकूत संपदा देषवासियों के लिए छोड़ गया।

माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने लेखन कार्य को कालूराम गंगराड़े द्वारा सम्पादित पत्र, प्रभा के माध्यम से और विस्तार दिया, जिसमें वह आगे चलकर सम्पादक भी हुए, प्रभा का प्रथम अंक 7 अप्रैल 1913 को निकला, इसमें तत्कालीन भारतीय समाज के बारे में विस्तृत विवेचन होता था। समाज के विचारों को पूर्णता से पालन के लिए समाज में स्त्री जाति के सुधार का प्रयत्न शीघ्र ही होना चाहिए। कर्मवीरों एवं कर्मवीराओं के हेतु यह कार्य कठिन है। अब शीघ्र ही कार्य में लगकर दिखाना चाहिए कि हम जीवित जातियों में गिने जाने योग्य हैं। स्त्री जाति, स्वतन्त्र विचार क्यों नहीं कर सकती? पुरुष जाति की नीचता एवं अन्याय के कारण। यहाँ पुरुष जाति अपने स्वार्थ की सीमा का उल्लंघन कर चुकी है। अब हमारे भाइयों को जरा चेतना चाहिए तथा अपनी माताओं, बहिनों एवं गृह–लक्ष्मियों को स्वतन्त्र सम्मति देने योग्य विद्या देने का एवं अपनी स्वार्थ–भरी आवश्यकताओं को कम करने का प्रयत्न करना चाहिए।

यह देखते हृदय व्याकुल हो जाता है कि अभी हम कुरीति–समर्थन एवं कुरीति–वृद्धि–सहायता नामक भयानक दोषों से छुटकारा नहीं पा सके। उस ओर न हमारा पूर्ण प्रयत्न ही है, न इन दोषों के द्वारा नाश हुए हमारे समाज की दशा पर हमें दया है। हमारे संकीर्ण हृदयों की दशा का चित्र खींचने के हेतु भारती शब्द दिया नहीं चाहती। नीच, दुराग्रही, विलासी एवं आलसियों की नीचता से व्याकुल होकर उन्होंने बालिकाओं की वेश्यावृत्ति पर विकट आन्दोलन किया था। बड़े–बड़े धनी, मानियों तथा इज्जतदारों को स्टेड के आन्दोलन के कारण मानहानि का दण्ड भोगना पड़ा था। उसने बड़े–बड़े घरों की दृढ़तापूर्वक जांच कर उनके हाल ज्यों–के–त्यों प्रकाशित कर दिए थे। आंग्ल समाज में वह समय एक महत्व का समय माना जाता है। इसी दृढ़ता एवं सत्यप्रियता से उसे जेल जाना पड़ा था।

क्या हमारे समाज में भी कोई ऐसे सपूत हैं, जो कुरीतियों के रोकने में, प्राण न्यौछावर करने का बीड़ा उठाकर, बाल–विवाह प्रथा के रोकने में, जीवन समर्पण करते हुए, भारत को शक्तिहीन, गुणहीन तथा गौरवहीन होने में बचावें? प्यारे भारतीय बन्धुओ, तुम्हारे प्रेम, सहायता, दया, सहानुभूति आन्दोलन एवं कर्मवीरता की वर्तमान समाज आवश्यकता दिखाकर मानो मन ही मन व्याकुल हो रहा है। उस पर दया करो। समाज के प्रत्येक अंग में रोग लग गया है। समाज को जीवित रखने के अनुभवी प्रेमियों, उत्तम औषधोपचार का शीघ्र ही प्रबन्ध कर समाज को मरने से बचाओ। हमारे कुछ भाई अनुकूल समय को सोचकर कार्य कर रहे हैं, हमें उनका प्रेमपूर्वक साथ देना चाहिए। समाज के पुराने सम्बन्धों को तोड़कर नये बनाना चाहिए। कूप–मंडूक बनने से क्या होगा? जातीय जीवन में ठोकरें खाकर सर्वनाश। यह बीसवीं शताब्दी है, आओ, इसकी आवश्यकता की पूर्ति पर एक बार विचार करें। पुराने झगड़े छोड़ो। उन्हें क्यो लिये बैठे हो। घृणा के बीजों को जला दो। कार्य–सिद्धि में बाधक पहाड़ी को नोपालियन के समान चूर–चूर कर डालो। उठो, कार्य करने का समय अपनी दुर्दशा देखकर हमें सर्वनाश का श्राप देने हेतु उद्यत हो रहा है।[5] प्रभा में प्रकाशित होने वाले विषयों में स्त्री शिक्षा, समाज में व्याप्त अधंकार, भ्रष्टाचार, छुआछूत, अकाल, गरीबी, नशा खोरी, विधवाओं की दशा, साम्प्रदायिक सद्भाव, किसानों की दशा तथा बाल–विवाह एवं सामाजिक समता पर अपना दृष्टिकोण प्रकट किया।

उनके लेखन में हमें समाज में हो रही स्त्रियों के प्रति सकारात्मक कार्यवाही तथा देश के लिए बलिदान होने वाले वीरों के प्रति श्रद्धा रखी। इसके साथ ही उन्होंने भारतीय समाज से यह आवाहन किया है कि हमें आपस में मिल जुलकर रहना चाहिए और जो विषमतायें व्याप्त है उन्हें दूर करते हुए एक नई पहल करनी चाहिए। भारत को 'सुधारवादियों' की आवश्यकता है, जिन लोगों में कुछ विवेकबुद्धि है, वे इस बात को स्वीकार करने में संकोच नहीं करेगें। संसार के इतिहास पर विचार करने वाले इस बात को निःसंकोच स्वीकार करते हैं। हमारे यहाँ की कुछ संस्थाएँ, जो अपने को सुधार–साकारिणी दिखाने का प्रयत्न करती रहती हैं, जो कुछ कर रही हैं, वह कुछ नहीं के बराबर ही कहना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति–संगठन कार्य, बृहद् रूप में ही शोभा देता है। सूक्ष्म रूप में नहीं।

सुधार का अर्थ प्राचीनता को एकदम त्याग देना ही नहीं है। सुधार का अर्थ है बिगड़ी हुई प्रथाओं को ठीक करना, जो मार्ग पर आ सकती हों, जो कार्य के योग्य हों, उन्हें संसार कें चिर–जीवित रखने के उपाय करना तथा जो व्यर्थ हैं, भ्रम से एवं दुराग्रह से चलाई गयी हैं या चलाई जा रही हैं, उनका निर्भयता से प्रतिकार करना तथा उनके नाश का निरन्तर प्रयत्न करना।[6] प्रभा में लिखते हुए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जिस प्रकार से भारत में समाज सुधार का कार्य हो रहा है उसमें और विवेकशील विद्वानों की आवश्यकता है। उनका समाज सुधार का आशय भारत की संस्कृति एवं सभ्यता को बनाये हुए अंधकार और आडम्बरों को दूर करना है।

भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं को लेकर जिस प्रकार का आंदोलन ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वारा देखने को मिल रहा है उसमें तेजी लाने की और आवश्यकता है। इसके लिए हमें जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा से ऊपर उठकर सामूहिक प्रयास करना चाहिए। पाखण्डी पण्डितों की हमें परवाह नहीं और न भट्टाचार्य का हमें भय है। निस्सत्व क्षत्रियों की जो आज भी बन्धु विरोधी होकर समाज का सर्वनाश कर रहे हों, हमें आवश्यकता नहीं है। दुराचारी तथा पाखण्डी, स्वार्थी एवं मूर्ख महाजनों से भी हमारा कार्य नहीं चल सकता। सेवा धर्म के तत्वों की मूल चर्मसेवी शूद्रों के भी हम न रहने के दिन देखने की ही प्रतीक्षा कर रहे हैं, हमें केवल कर्मवीर चाहिए, वह चाहे किसी भी जाति का हो। यदि उसमें सुधार–विचारों का महासागर लहरा रहा है तो अवश्य ही वह आदर्श नररत्न है।

बन्धुओं! अपने को नीच मानकर, भारत रत्नगर्भा को उचित वस्तुओं के पाने का अनधिकारी न समझो। जो जलवायु उच्चों ने सेवन किया है, वही उच्च बनने वालों ने किया है। जिस भारत माता की गोदी में तुम खेले हो उसी में वे भी खेले हैं। यदि तुममें गुणों तथा विद्याओं का अभाव है, तो वह केवल तद्विषयों के चिरवियोग तथा अनभ्यास से है। अभ्यास करो, अवश्य ही विजयी होओगें। तुम गुणी, विद्वान्, कला–कुशल, सब कुछ होओगें। प्रयत्न करने से क्या नहीं होता? क्या महाकवि महात्मा तुलसीदास जी का यह कथन कभी भी अन्यथा हो सकता है?

अतिशय रगड़ करै जो कोई।
अनल प्रगट चन्दन ते होई।।

बस, उठो, तुम भी हमारे ही समान हो, हमारे ही हो, हम भी तुम्हारे हैं। बस, प्रयत्न की देर है, घर्षण चाहिए, इस कमी को पूर्ण करो।[7] भारतीय समाज में व्याप्त ब्राम्हणवाद को लेकर उन्होंने आलोचना की, प्रभा में लिखते हुए उन्होंने यह कहा कि जिस प्रकार भारत में वर्ण आधारित समाज है तथा वर्चस्व को लेकर जो पूर्वाग्रह बने हुए है, उन्हें अब छोड़ने की आवश्यकता हैं। हमें समाज के शूद्र वर्ग को भी वह स्थान देना चाहिए जिस प्रकार से अन्य वर्ग का है।

उन्होनें मध्यकालीन भारतीय विद्वानों की लेखनी से समाज को जोड़ने वाले अनगिनत ऐसे उदाहरण बतलाये जिनमें सामाजिक न्याय एवं समता का बोध है। इसलिए हमें अपने विचारों में सुधार लाकर आगे बढ़ना चाहिए। समाज की व्यवस्था का अधिकार आजकल समाज के मूर्ख अंश के हाथों में रहता है, तभी विचत्र घटनाएँ देखने का अवसर आता रहता है। देश की आवश्यकताओं पर विचार करना प्राय दुस्साध्य हो रहा है। यह हमारे सामाजिक जीवन का ही प्रताप है कि, हंटरों की मार खाकर प्राण देने वाले अफ्रीका प्रवासी बन्धुओं को कुछ न देकर, मूर्खों और मुक्तखोरों को दान दिया जा रहा है। वे नीच, धर्म के दलाल कहाँ हैं, जो अपने 'पौ बारह' करते समय, हजारों तरह के भय दिखा, समाज का सर्वनाश कर डालते हैं। आज उन्हें यह दिखाना चाहिए, कि भारतवर्ष के लूटे हुए धन का कितना भाग प्रवासी भाईयों की सेवा के हेतु रख छोड़ा गया है, या उनके 'निर्मल' उपदेशों को पाकर कितने भारत सन्तान अपने भाइयों की सहायता पर कटिबद्ध हुए हैं।

हमारे प्राणप्यारे भाईयों के प्रवासी भारतवासियों के कष्ट का केन्द्र–स्थल दक्षिण अफ्रीका है। पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हमारी कीर्ति का केन्द्र–स्थल भी वही होगा, क्योंकि आज हमारे कर्तव्य का केन्द्र–स्थल भी वही है। क्या समाज को यह विदित है, कि कष्ट, कर्तव्य और कीर्ति के केन्द्र–स्थल अलग नहीं हुआ करते। सबका स्थान एक ही होता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि समाज की योग्य आन्दोलनकारिणी शक्ति कम होते ही, वहीं, कष्ट से कर्तव्य पर दृढ़ रहकर बनाया हुआ कीर्ति का किला क्षण–भर में नष्टभ्रष्ट हो जाता है। शक्तिहीन समाज को हरएक समाज लातों से कुचल डालता है और उसके जीवन–कार्य में

दासत्व और भीरूता ही रह जाते हैं। परन्तु शक्तिवान्, उद्योगी और पवित्र समाज को संसार के सब समाज मस्तक झुकाते हैं। उस समाज का मस्तक अन्याय के प्रतिकूल आन्दोलन की शक्तियों से भरा रहता है। 'गांधी' इसी बात के आदर्श है।[8] आज भारत में जिस प्रकार से अंग्रेजों के द्वारा स्थानीय लोगों को अफ्रीका, अमेरिका तथा दूसरे अन्य देशों में ले जाकर बंधुआ मजदूर के रूप में काम करवाया जाता है, इस तथ्य को दिखलाने की कोशिश कोई नहीं कर रहा है। देश में हो रही लूट को यदि अंग्रेज पलायन करने वाले प्रवासी भाईयों पर खर्च करें तो शायद उनकी स्थिति में भी सुधार आये।

गरीबी से पलायन करने पर मजबूर हमें अपने उन भाईयों का भी ध्यान रखना चाहिए जो अपने परिवारों को छोड़कर दूसरे देश ले जाये जा रहे है। हमारा यह कर्तव्य बनता है कि सामाजिक आंदोलन की शक्ति को कमजोर न होने दे, इसकी प्रेरणा हम महात्मा गांधी के आंदोलन से ले सकते हैं। इस नोट को लिखने के समय जब हम यह सोचते हैं कि, दूसरे देश हमारी दशा पर क्या कहेंगे, तब हमारी आँखें नीची हो जाती हैं। परन्तु जब हमारा ध्यान उच्चता के मार्ग के वास्तविक तत्वों पर जाता है, तब हम व्यर्थ प्रशंसा का आडम्बरपूर्ण ढोल नहीं पीटना चाहते। भारत की विधवा बालिकाओं की जो संख्या प्रकाशित हुई है, उसे देखकर सच्चे भारतीय भाइयों का कलेजा जल रहा होगा। परन्तु इस दुर्गुण समर्थन की बीमारी ने हमारी दशा बहुत बुरी कर दी है। यहाँ सुनता कौन है? सब अपनी–अपनी तान में मस्त है। इन हमारी कई लाख बहिनों की क्या दुर्दशा होगी इसका किसी को ध्यान नहीं। जब ये यौवन दशा में दुराचरण द्वारा हमारी कीर्ति पताका फहरावेंगी तब सारा संसार तालियाँ पीटेगा। परन्तु हम तो उच्च आस्तिक ठहरे, ऐसे गन्दे विषय पर कैसे ध्यान दे सकते हैं? चाहे बहिनें कुलटा भले ही हो जाये, धन्य है हमारे शील को। कहाँ हैं वे वीर जो इन प्रथाओं को रोकने के हेतु कमर कसकर देख रही हैं। वे उठें, इन भारत माता की दुःखिनी बालिकाओं का उद्धार करें।

नेताओं को उन्नति की पुकार मचाने दो, गुरु बनने की बीमारीवालों को गुरु बनने दो, आस्तिकों को शुद्ध आस्तिक बने रहने दो, निर्दयों को निर्दयता करने दो, आलसियों को सोने दो एवं निन्दकों को पुकारने दो। उत्साही वीरों, उठो, अपने मूर्ख भाईयों में मिल जाओ। उन्हें शिक्षा के तत्त्व सरलता और बारीकी के साथ शीघ्र समझाओ। बालिकाओं की व्यवस्था की यथार्थ सूचना उन भोले भाईयों को दो। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारी 'भारतीयता' नाम ही भर को शेष रह जायगी। तुम्हारे आस्तिक बन्धु तो इस ओर ध्यान न देंगे, हाँ, दस वर्ष के बाद यह संख्या दूनी अवश्य कर देगें, जिससे कन्याएँ और तुम, उनकी दया पर यावज्जीवन रोते रहोगे। बस, वे अपनी कर्तव्यवीरता इसी प्रकार दिखावेंगे।

कर्मवीरो, बस तुम्हीं अपने जीवन–वारिधि से एक ठण्डी लहर उठाकर दुखी हृदयों को शीतल करो। उनका दुःख दूर करो। तुम्हारे प्रयत्नों के विजयी होने का सुखदायी समय आ चुका है। विधवा बहिनों के शिक्षित होने का तथा उनके दुःखी जीवन को शान्ति मिलने का उद्योग करो। स्मरण रखो : ''सच्चे कार्य साधक एवं उत्साही वीरों के परिश्रम के पुरस्कार ही के हेतु ईश्वर ने 'विजय' को पैदा किया है।''[9] भारत में महिलाओं की प्रमुख समस्याओं में से एक समस्या बालविवाह तथा विधवा आज भी बनी हुई है। कम उम्र में विधवा होने वाली बालिकाये न सिर्फ व्यक्तिगत रूप से कमजोर पड़ती है बल्कि समाज द्वारा उन्हें और प्रताड़ित किया जाता हैं।

वह अपने लेखन के माध्यम से प्रत्येक भारतीय से यह आग्रह करते हैं कि हमें मिल जुलकर इस विकट समस्या का स्थायी समाधान करने की आवश्यकता है। सच्चा, शिक्षित मानव एवं वीर वही कहलाने का हकदार है जो इनका दर्द समझे और मनन करे एवं उनके अधिकारों के लिए समाज में जाग्रति लाये। हमें जानकार बहुत हर्ष हुआ कि हमारे एक मुसलमान भाई ने एम. ए. तक संस्कृत पढ़कर एक छात्रवृत्ति पायी है। छात्रवृत्ति 400 रूपये महीने की है। आप

जर्मनी में संस्कृत के 'साहित्याचार्य' होने के हेतु जावेंगे। आपका नाम है 'मुहम्मदशाह विदुल्ला' एम. ए.। आपने बी. ए. पास होने के समय, विश्व–विद्यालय से 'सम्मान योग्य' विद्यार्थी कहलाने का सौभाग्य प्राप्त किया है। इस अनुकूल परिश्रम पर हम आपको बधाई देते हैं। आप इस विषय में प्रायः पहिले ही मुसलमान सज्जन है। आशा है, इस प्रकार, संस्कृत साहित्य का प्रचार होने पर अपनी आपसी महत्ता को, हिन्दू और मुसलमान ये दोनों जातियाँ, समझेंगी। मुसलमान और ईसाई बालकों को जो छल–छिद्र त्यागकर 'देश हितैषी' बनना चाहते हों जो यथार्थ ही भारतीय कहलाना चाहते हों, तो मिस्टर मुहम्मदशाह विदुल्ला को आदर्श मानना चाहिए। मि. मुहम्मदशाह से भारतवर्ष बहुत कुछ आशा रखता है। यदि वे भारत पर ही अपनी मुसलमानीयत स्थिर रख सके हों, तो उन्हें हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान देना चाहिए।[10] भारतीय समाज की क्षमता को बनाये रखने के लिए साम्प्रदायिक सदभाव का होना आवश्यक है। शताब्दियों से विकसित हुई साँझी संस्कृति का प्रतिदर्श हमें आज भी देखने को मिलता है। मध्यकालीन मुस्लिम संस्कृति में हमें हिन्दुओं का योगदान देखने को मिलता है जिससे समन्वय की भावना और विकसित हुई। समाज की बेहतरी के लिए यह आवश्यक है कि हमें समाज की भाषा को सीखना चाहिए जो किसी भी धर्म, क्षेत्र, सम्प्रदाय या समुदाय की हो। इससे आपसी तालमेल को और बढ़ावा मिलता है फिर बात उर्दू की हो या संस्कृत की हो। हिन्दुओं को मुस्लिमों की ओर मुस्लिमों को हिन्दुओं की भाषा का ज्ञान होना चाहिए जिससे आपसी सौहार्द बना रहे। इस प्रकार के उदाहरण से वह समाज में सामंजस्य बैठाने की कोशिश करते रहे और अपनी लेखनी में साम्प्रदायिक सदभाव बढ़ाने की कोशिश करते रहे।

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था लोगों को हमेशा बाँटती रही है इसके खिलाफ भी उन्होंने अपने लेखन से बदलाव लाने की कोशिश की। उनका मानना था कि इस सामाजिक द्वेष का स्थायी समाधान हो क्योंकि जब तक समाज में गैर बराबरी रहेगी तब तक समानता का सपना अधूरा रहेगा। किसी भी देश की दशा तब तक ठीक रहती है जब तक कि उनकी देखभाल कर दर्दों की औषधि करने का अधिकारी बननेवाला चुप होकर न बैठ जाये। एक का इस प्रकार बैठ जाना ही यह सिद्ध करता है कि वह अन्तःकरण से चाहता है कि जातियों में द्वेष की आग भड़के और असन्तोष की आँधी अपना कार्य परिपूर्णता पर पहुँचा दे।[11] तत्कालीन समय में हो रहे जातीय झगड़ों के नाम पर दूषित होती मानवीयता का मर्म उन्हें हमेशा कचोटता रहता था। इसलिए उन्होंने अपने लेखन में इस दर्द को बंया किया और इसके स्थायी समाधान के लिए लोगों से एक सार्थक पहल करने की कोशिश की।

भारत में अंग्रेजों के आने के बाद में साम्राज्यवादी मंशा के अनुरूप कई बदलाव किए गये जिनमें शिक्षा प्रमुख रही। अंग्रेज भारत की परम्परागत रूप से दी जा रही शिक्षा के विरूद्ध थे, इसलिए उन्होंने आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा की वकालत की। उनका मकसद भारत में सिर्फ लिपिक तैयार करना था, जो उनके कामों में सहायक हो तथा रंग रूप में भारतीय और मस्तिष्क से अंग्रेज हो। अतः उन्होंने शिक्षा की निस्यंदन सिद्धान्त को लागू किया जिसके माध्यम से शिक्षा ऊपरी वर्ग से छन–छन कर निचले स्तर तक पहुंचे। इसका आम भारतीयों से कोई लेना–देना नहीं था बल्कि साम्राज्यवादी मानसिक गुलामी का रूप देना था। देश की शिक्षा का क्षेत्र, बहुत ही संकीर्ण रखा गया है, अनुकूल शिक्षा पर अभी विचार ही नहीं किया जा जाता। वे भाव, जो उच्च शिक्षा से पैदा होने चाहिए, प्रायः भारतवासियों के हृदय में पूर्ण रूप से पैदा करने का भरपूर अवसर ही नहीं मिलता। जिनके मस्तक देश की शिक्षा की वर्तमान अवस्था को सरलता से समझ सकते हैं उनसे यह बात छिपी नहीं है कि वर्तमान शिक्षा–प्रणाली क्या कर रही है और उसे यथार्थ में क्या करना चाहिए। हाँ, सम्भव है, एकांगीयता के कार्य करने से भलाई सोची गयी हो, परन्तु प्रथम तो ऐसा करना नैतिक दृष्टि से अनुचित है। इसके सिवाय उस समय, जब देश के कार्यकारी युवकों को अपनी आवश्यकता सोचते–सोचते, शिक्षा की प्रतिकूलता का ज्ञान

हो गया हो, शिक्षा विभाग को चाहिए कि यदि वह पूर्ण रूप से देश के अनुकूल शिक्षा देने में संकीर्णता दिखाना ही चाहता है तो कम–से–कम, जो शिक्षा–विभाग के गूढ़ स्वार्थ की साधारण रक्षा कर, शिक्षा स्वातन्त्रय के विचार जीवित जातियों की दृष्टि में कार्यकारी समझे जाते हैं, भारतवासियों में भी पहुँचा दे और आत्म–सम्मान, सरल सहायता तथा नैतिक हानि के विचार से एतद्देशीय भाषाओं द्वारा उच्च शिक्षा देना स्वीकार करें। साथ ही नैतिक विचारों की शिक्षा को उस कक्षा में पहुँचा दे, कि जिससे भारतीय ग्रेजुएटों का चरित्र–संगठन ठीक रीति पर हो। आजकल की उच्च शिक्षा में चरित्र–गठन कोई आवश्यक विषय नही हैं। नैतिक शिक्षा कोई आवश्यकीय शिक्षा नहीं है और ऊँचे उद्देश्यों वाले होना ग्रेजुएटों का कोई आवश्यक लक्षण नहीं माना गया है। नैतिक शिक्षा का अभाव उन्हें योग्य ग्रेजुएट नहीं बनने देता। यही कारण है, कि आजकल के ग्रेजुएटों से, देश, जाति और साहित्य की भलाई की आशा करना तो दूर की बात है, स्वयं ग्रेजुएट भी विमल चरित्र है या नहीं, यह भी विचारणीय है।[12] शिक्षा व्यवस्था को लेकर वार्ताओं तथा जागरूकता पर अपनी पैनी निगाह रखते हुए माखनलाल ने शिक्षा पर भी अपने विचार रखे और उच्चशिक्षा को देशज भाषा में देने की वकालत की। उनका मानना था कि बौद्धिक विकास के साथ–साथ नैतिक विकास एवं चरित्र निर्माण भी श्रेष्ठ मानव की निशानी है। इसलिए हमारे देश को न सिर्फ शिक्षित, प्रबुद्ध, प्रखर तरूणों की आवश्यकता है।

किसी भी देश के विकास में भाषा एक अहम कड़ी हैं। भारत जैसे बहुभाषीय देश में जहाँ हजारों भाषा एवं बोलियां हैं, वहाँ पर किसी एक भाषा को थोपा नही जा सकता हैं। इसलिए हमें लोक (आमजन) की भाषा को ध्यान में रखते हुए विकास की बात करनी चाहिए। भले ही यहाँ अनेक भाषायें है लेकिन फिर भी सांस्कृतिक एकता बनी हुई है और लोग आपस में मिल जुलकर रहते है जिसका फलन हमें देशभर में बसे हुए अनेक क्षेत्रों के लोगों की बोलियों में दिखता है। भाषा देश की आवाज है, परदेश की नहीं। पंजाब के किसी नगर में आग लगी कि 'दौड़ो, बचाओ, पानी लाओ' की आवाज बंगाली में नहीं, और उड़िया में नहीं, पंजाबी में सुनाई देने लगी। दक्षिण के इगतपुरी या पूना नगर में रोगी बीमार हुआ, अशक्तता बढ़ी, व्याकुल हो गया और उसने 'अरे राम रे' कहकर कराहना शुरू किया; पर वह मराठी में, फ्रेंच या जर्मन में नहीं। गुजरात में अकाल पड़ गया, वहाँ के लोग मारे–मारे फिरने लगे, और अपनी दशा के चित्र गुजराती गीतों में गा–गाकर सुनाने लगे। मध्य भारत के किसी कोने में ओले गिरे, कृषि का नाश हो गया, सब किसान अपना रोना अपने राजा के सम्मुख रोने गये, और उन्होंने, अपनी भाषा में अपनी राम कहानी अपने राजा से कह सुनाई। बस, इस तरह, देश के जिस कोने से सच्ची आवाज आयी, वह उसी कोने की बोली से आयी और जिस नर दानव समूह ने उस आवाज के सुनने और समझने में उपेक्षा दिखाई, हम सच कहते हैं, उसने देश के व्याकुल हृदयों से निकली हुई सच्ची आवाज न सुन पायी।[13] भाषा केवल मनोभावों को व्यक्त करने का माध्यम है। किसी का दर्द, संवेदनाएँ और पीड़ा को समझने के लिए मानवीयता होना जरूरी है बजाऐ भाषाओं के ज्ञान से, इसलिए माखनलाल ने देश के लिए सच्ची भाषा को किसी एक आयाम या क्षेत्र विशेष में नहीं बांधा।

भारत प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान देश रहा है और जीविका का साधन कृषि तथा इस पर निर्भर विभिन्न उद्योग रहें हैं, किसानों की समस्याओं पर कई विद्वानों ने अपने विचार रखे जिनमें से एक माखनलाल चतुर्वेदी है। किसानों का सवाल देश की एक विकट समस्या है। देश में सैकड़े पीछे 71 किसान रहते हैं और 29 दूसरे धन्धे के लोग। मध्यप्रदेश में तो यह संख्या और भी बढ़ी हुई है। यहाँ सौ आदमी पीछे 74.51 (साढ़े, चौहत्तर प्रतिशत) किसान है, और (25.5) साढ़े पच्चीस प्रतिशत दूसरे धंधे के लोग; यानी भारत–वर्ष में आज हर चारआदमी पीछे तीन किसान है। आमदनी की दृष्टि से देखिए, तब भी आपको बड़ी सुहावनी दशा दीख पड़ेगी! भारत के किसान इतना जूट पैदा करते हैं जो संसार भर को पूरता है। कपास के पैदा

करने में भारत का नम्बर संसार भर में दूसरा है। तिल्ली, अलसी, मूंगफली और तिलहन भी भारत इतना उत्पन्न करता है कि वह अपनी माँग पूरी करके संसार के बाजारों को बाट देता है और टैक्स देने में? वहाँ भी भारत का किसान कभी नहीं करता। यदि देश में 100 रू. टैक्स वसूल किया जाता है तो उसका 90 रू. किसानों से वसूल होता है किन्तु इसके पश्चात् भी भारत के किसान की हालत क्या है? भारत का भाग्य–विधाता, भारत में महान धन उपजाने वाला, भारत में सबसे बड़ी तादाद रखने वाला किसान दुर्दशा से पीड़ित, अकाल का मारा हुआ, कर्ज से दबा हुआ है।

इन 74.5 फीसदी किसानों की यह हालत है कि इनमें से 50 को दोनों जून पेट भर अनाज नसीब नहीं होता। आप राज्यसभा (स्टेट कौन्सिल) पर दृष्टि डालें, बड़ी धारा सभी (लेजिस्लेटिव असेंबली) को देखें, इतना ही क्यों, आप प्रान्तीय कौन्सिलों पर दृष्टि दौड़ावें, आपको वहाँ किसी भी किसान के दर्शन न होंगे। 'किसान' नामधारी कुछ धनिक भेड़िए वहाँ जरूर भीड़ मचाए हुए हैं किन्तु वे किसानी और किसान शब्द से उतने ही अपरिचित है जितना कामी तप से, अत्याचारी इन्साफ से और भारत के किसान सुख और अधिकार से अपरिचित हैं। इतना ही नहीं, जब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जैसी स्थानीय संस्था का सवाल आता है तब भी किसान को उन संस्थाओं से प्लेग के रोगी की तरह दूर रखा जाता है, किसान के शरीर पर चिन्दियाँ लटकती हैं, अथवा वह अधनंगा रह कर ही अपने दिनों को गुजारता है। व्यापारी और शहर के सफेदपोश लोगों के यहाँ नित्य ही त्यौहार है, किन्तु किसान के घर में त्यौहारों पर भी मीठा खाना नसीब नहीं होता। न्यायालय में रिश्वत देने के लिए, पुलिस चौकी पर हथकड़ियों में बन्द, अफसरों के सम्मुख बेगार देने और जूतियाँ खाने के लिए और अगर फसल में कुछ पैदा हो गया, तो साहूकार के द्वारा लूटे जाने के लिए आप सदैव किसान नामक प्राणी को हाजिर पाइएगा।

किसानों की यह हालत क्यों है? इसलिए कि किसान अज्ञानी है। इसलिए कि वह शक्तिहीन है। इसलिए कि उसे पता नहीं कि संसार में जन्म लेकर आने के बाद उसका काम संकट उठाना और कुत्ते–बिल्लियों की तरह जीवन बिताना और अनाज पैदा करके संसार के राक्षसों का पोषण करना ही नहीं है। उसे नहीं मालूम कि धनिक तब तक जिन्दा हैं, राज्य तब तक कायम हैं, ये सारी कौन्सिलें तब तक हैं, जब तक वह अनाज उपजाता और मालगुजारी देता है। जिस दिन वह इन्कार कर देगा, उस दिन समस्त संसार में महाप्रलय मच जाएगा। उसे नहीं मालूम कि संसार का ज्ञान, संसार के अधिकार और संसार की ताकत उससे किसने छीनकर रखी है और क्यों छीनकर रखी है। वह नहीं जानता कि जिस दिन वह अज्ञान इन्कार कर उठेगा, उस दिन ज्ञान के ठेकेदार स्कूल फिसल पड़ेंगे, कालेज नष्ट हो जावेंगे और विश्वविद्यालय धूल में मिल जायेंगे। उसे नहीं मालूम कि जिस दिन उसका खून चूसने के लिए न होगा, उस दिन देश में यह उजाला, यह चहल–पहल, यह कोलाहल न होगा। फौज और पुलिस, वजीर और वाइसराय, सब कुछ किसान की गाढी कमाई के खेल हैं। बात इतनी ही है कि किसान इस बात को जानता नहीं। यदि वह इन बातों को जान ले, यदि उसको इस बात का पता रहे कि हर सौ आदमी पीछे पचहत्तर उसके साथी, उसके भाईबन्द हैं, यदि वह जाने कि देश की सारी सम्पत्ति, देश के सारे अधिकार और देश के समस्त सुखों का हकदार वह है और यदि उसे अपने पतन के कारणों का पता हो, और उसे अपने ऊँचे उठने के उपायों का ज्ञान हो जाय, तो निस्सन्देह किसान कर्म–पथ में लग सकता है। किन्तु आज तक उसे अँधेरे में रखा गया है। पाठक, यदि आप किसान नहीं हैं तो ये पंक्तियाँ आपके पास केवल इस लिए पहुँचाई जा रही है कि एक तो किसानों की कष्ट–कथा और ऊँचे उठने के वर्णन में जो कमी हो, उसे पूरा करने की आप सूचना करें और दूसरे आप यदि हो सके, तो किसानों के कानों

तक इन पंक्तियों को पहुँचा दें और यदि आप किसान है तो इन पंक्तियों को ध्यान में पढ़ें–सुनें और अपनी अवस्था पर विचार करें।

हमारी यह इच्छा नहीं कि किसानों के बड़प्पन के झूठे गीत गाकर, उनका मन प्रसन्न करें या उन्हें तिनके के समान कमजोर समझकर, यह महान तत्त्व भूल जायें कि हजारों तिनकों के मेल से एक ऐसा रस्सा तैयार हो सकता है, जो एक मदान्ध और बलवान हाथी को बाँध सके।[14] किसानों की समस्याओं पर उन्होनें विशद् लेखन कार्य किया तथा उनकी समस्यों को लोगों के सामने रखा। भारत में अंग्रेजी शासन को कमजोर करने के लिए उनके द्वारा बनायी गयी व्यवस्था को असहयोग प्रदान करके बदलाव लाया जा सकता है इसके लिए महात्मा गांधी तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का आंदोलन लगातार चल रहा है। इसमें हम अपनी सहभागिता के रूप में अंग्रेजी स्कूलों तथा विश्वविद्यालय का बहिष्कार करके कर सकते हैं। हम सरकारी शिक्षा–प्रणाली को काफी देख चुके है। देखते–देखते एक सौ वर्ष से अधिक समय हो गया। वह सरकारी नौकर तैयार करने के लिए प्रारम्भ की गयी थी। उसने सरकार को जज दिये उन न्यायालयों के लिए, जिनकी निष्पक्षता में हमें सन्देह है; सरकार को उसने वकील दिये जिन्होंने न्याय कराने के नाम पर हमारे बीच कलह को ही उत्तेजना दी;. सरकार को उसने ऐसे कौंसिलर दिये जो अधिकतर 'जी–हुजूर' का पाठ रटते रहते हैं और खानबहादुरी तथा रायबहादुरी को अपना सौभाग्य मानते हैं, सरकार को उसने ऐसे सी. आई. डी. और पुलिस अफसर दिये जिनसे भारतवासी आज काँपते हैं और जिनकी धाक से सच्चाई तथा देश–भक्ति मुँह छिपाती है; सरकार को उसने ऐसे सैनिक दिये जो दूसरों की ओर स्वयं अपनी भी स्वाधीनता के अपहरण के साधन बन रहे हैं और सबसे अधिक बुराई की बात तो यह है कि उसने ऐसे नागरिक उत्पन्न किये जो इन बुराइयों को करते और सहते चले आ रहे हैं और दोनों प्रकार से सारे देश को स्वार्थी सरकार का गुलाम बनाने में सहायक हो रहे हैं। परन्तु कुछ लोग कहते हैं इसी शिक्षा–प्रणाली ने देश की स्वाधीनता के उपासक स्वर्गीय दादाभाई, तिलक, गोखले और वर्तमान गांधीजी, लालाजी, मालवीयजी आदि उत्पन्न किये हैं। उनका कहना सत्य है, केवल इसी अर्थ में कि ये देशभक्त इसी शिक्षा–प्रणाली के काल में उत्पन्न हुए हैं। इनकी महानता में और वर्तमान शिक्षा–प्रणाली में कार्य कारण सम्बन्ध नहीं है जैसा कि मुगल साम्राज्य की शिक्षा–प्रणाली से शिवाजी का नहीं था, या हिरण्यकश्यप की शिक्षा से प्रहलाद का। ये आत्माएँ, यदि इन्हें सरकारी स्कूलों में शिक्षा नहीं मिलती तो भी, अपना चमत्कार दिखाती ही। कई अंशों में तो यह कहा जा सकता है कि यदि सरकारी शिक्षा–प्रणाली की भ्रष्टता न होती तो इनका प्रकाश और भी तेजी से चमकता। अस्तु! कुछ व्यक्तियों को छोड़कर अधिकतर भारतवासियों की आँखें खिलाफत के सम्बन्ध में धर्म–नाश और पंजाब के सम्बन्ध में सम्मान–नाश ने खोल दी हैं और इस जाग्रह राष्ट्रीयता के जोश की बाढ़ में सरकारी प्रतिष्ठा स्थापित करने के अन्य साधनों के समान सरकारी व्यवस्था के मूलभूत सरकारी स्कूल और कॉलेज भी टूटते जा रहे हैं।

हमारे युवकों ने आशा के अनुकूल ही कार्य किया और कर रहे हैं। माता–पिता का दबाव तथा अन्य बन्धनों के रहते हुए भी उन्होंने राष्ट्रीयता के दर्शन करने के लिए सरकारी शिक्षा में माया–जाल को तोड़ दिया है। उनको अनेक धन्यवाद! वह पुत्र धन्य है, जो पिता को भी हट करके सुमार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करता है। प्रहलाद ने परमात्मा के लिए अपने पिता को भी त्याग दिया था और उसकी संसार ने पूजा की। उसी दृष्टि से हमारे इन युवकों का कार्य सर्वथा धर्म–सम्मत, सराहनीय और अनुकरणीय है। सरकार से सम्बन्ध रखने वाले सब स्कूल खाली हो जावें, तो न तो सरकार को नौकर मिल सकेंगे और न वह वर्तमान स्वरूप में स्थिर रह सकेगी। जिस दिन यह अवस्था हो जायेगी, वह हमारी विजय का दिन होगा और हमारी मातृभूमि की स्वाधीनता का भी। अतएव भारत के सच्चे पुत्रों को महात्मा गांधी की इच्छा

के अनुसार राष्ट्रीय कांग्रेस के आदेश को मानकर स्कूलों और कॉलेजों के बहिष्कार के कार्य में भिड़ जाना चाहिए। हम मानते हैं, इस संहार के कार्य में उनकी हानि अवश्य होगी। पर वह हानि ऐसी नहीं है जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती, या जिसके मुकाबले में कई गुना अधिक लाभ स्वतन्त्रता के रूप में नहीं मिल सकता। संहार भी प्रकारान्तर में निर्माण का कार्य है। जैसी तत्परता और स्वार्थत्यागमय देशभक्ति हमारे विद्यार्थी दिखला रहे हैं वैसी ही उनके 'गुरु' कहलाने वाले शिक्षक भी खिलावें तो निर्माण का प्रत्यक्ष स्वरूप ही सहज में दिख सकता है।

अब समय आया है उन्हें अपना गुरुत्व सिद्ध करने का–अन्यथा गुरुडम की पोल खुल जावेगी। देश चाहता है और उसी की प्रेरणा से हमारे युवक आगे बढ़े हैं, उसी प्रकार शिक्षकों को चाहिए कि वे भी सरकार स्कूल छोड़ें क्योंकि वे समझदार हैं, उन्हें अपने मानापमान का अधिक ख्याल है, उन्हें अपने विद्यार्थियों के हिताहित का अधिक ध्यान है और देश की आवश्यकताओं का अधिक ज्ञान है। वे विद्यार्थियों का साथ दें और सिद्ध करके दिखा दें कि किसी चालबाज के चक्कर में पकड़कर ही वे गुलाम उत्पन्न कर रहे थे परन्तु उनकी छड़ी और वाणी में देश के बच्चों को स्वतन्त्रता के उपासक और सम्राट् तथा शासक बनाने का सामर्थ्य भी विद्यमान है।[15] स्वतंत्रता आंदोलन के साथ–साथ चल रहा सामाजिक बदलाव बिना युवाओं के अधूरा है इसलिए विद्यार्थी एवं शिक्षकों से वह अनुरोध करते हैं कि वे देश के विकास में सहयोग करे।

बाल विवाह को लेकर उन्होनें कई बार लेखन के माध्यम से आंदोलन की शुरूआत की। उनका मकसद बाल विवाह से होने वाली शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक हानि से था। इसलिए उन्होंने इस बुराई के खिलाफ उन्मुक्त स्वर में विरोध किया। अभी कुछ दिनों पहले, हमारे देश के भाइयों ने मिस मेयो की गोलियाँ देने का तूफान उठा रखा था। आज उन्हीं में से कुछ इस बात का समर्थन कर रहे हैं कि न तो बालिकाओं की शादी की उम्र बढ़ाई जाय, न सम्भोग–सम्मति की। हमारे देश के पुराने विचार के लोगों का यह भी कहना है कि स्त्रियों की शादी की उम्र बढ़ाना एक धार्मिक पक्षपात–हीनता के घोषणा–पत्र को तोड़ती है। वे यह भी कहते हैं कि कानून को, हमारे सामाजिक क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उनकी यह भी पुकार है कि यदि शादी की उम्र बढ़ाने वाली कमेटी की सिफारिशों पर ध्यान दिया गया, या यदि श्रीयुत हरिविलास शारदा के बाल–विवाह प्रतिबन्धक बिल को असेम्बली द्वारा स्वीकृत किया गया तो 'धर्म खतरे में पड़ जायेगा।

महारानी विक्टोरिया का घोषणा–पत्र टूटने की कल्पना करने वाले लोगों से क्या हम पूछें कि देश में ईसाई धर्म के प्रचार से, व्यापारिक ढंग से कसाईखानों में होने वाले गो–वध, देश की नौकरियों, देश की रेलों, देश के पदों और सुविधाओं में होने वाले काले–गोरे के भेद से, क्या महारानी विक्टोरिया का घोषण–पत्र नहीं टूटा। फिर उस दिन आप कहाँ थे? क्यो गो–वध धार्मिक प्रश्न नहीं? उस और कितने ब्राह्मणों और धर्मप्राणों ने अपने प्राण दिये? इसके सिवा, बालिकाओं पर बालकों की शादी की उम्र बढ़ाने का, धर्म से कैसे सम्बन्ध आवेगा? यह माना कि एक जमाना देश में ऐसा था, जब हिन्दू बालिकाओं का अपहरण करने वाले शासक थे और थे गुण्डे। उन दिनों छोटी उम्र के विवाहों में हम लोगों ने चाहे जो लाभ सोचा हो, किन्तु आज तो, छोटी उम्र के विवाह की जिद, देश–घातकता है, इसलिए कि हम देश की होनहार सन्तान के लगातार निर्वीय रहने की इच्छा करते है; अधार्मिकता है, इसीलिए कि हम निर्दयतापूर्वक उन बालकों का भाग्य अपनी रूढ़ियों में कील देते हैं जिनमें अपना भला–बुरा समझने की शक्ति नहीं और साथ ही हम अधिक और कम उम्र की व्यभिचार–आज्ञा को धर्म की आज्ञा कहने का आडम्बर करते हैं।

यदि तर्क और ज्ञान की ईमानदारी से काम लें, तो शादी की उम्र के निर्णय में हमें पाँच बातों का सम्बन्ध दिख पड़ता हैः पहिली बात तो हमें यह सोचनी चाहिए कि बाल–विवाहों के

होने से हमारे बालकों और बालिकाओं के शरीर–स्वस्थ कैसे होंगे दूसरी यह कि छोटी उम्र में विवाहितों को इन्द्रिय–जनित रोग किस तादाद में होंगे और उनकी सन्तान कैसी होगी। तीसरी बात यह कि शीघ्र शादी होने से अधिक शिक्षण प्राप्ति का तथा पूर्ण मनोयोग से विस्तृत विश्व का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग कहाँ तक खुला रहेगा। चौथे, छोटी उम्र की शादी से शादी करने वालों और उनकी संतानों द्वारा जिस समाज का निर्माण होगा वह कहाँ तक दृढ़ नीरोग, निर्भीक, अपने पैरों पर खड़ा होने वाला और कष्ट–सहिष्णु होगा। पाँचवी तथा अत्यन्त आवश्यक बात ध्यान देने योग्य यह है कि छोटी उम्र की शादी के परिणामस्वरूप विवाहितों की धन कमाने की ताकत अधिक होगी या कम, क्या वे कम उम्र में पैदा होने वाले बच्चों का आर्थिक बोझ शीघ्र संभालने में समर्थ हो सकेंगे, छोटी उम्र के परिणामस्वरूप उनके शरीर अधिक कमाई–योग्य हो सकेंगे या रह सकेंगे और क्या अपनी कमाई से वे अपना, परिवार का, बच्चों का भरण–पोषण कर सकेंगे या स्वभावतः होने वाली स्थायी बीमारियों के बिल चुका सकेंगे? मनुस्मृति या किसी भी धर्म–शास्त्र को उपयोगिता के इस क्षेत्र में नहीं आना चाहिए और अगर वह आवे ही तो, धर्म की उच्च सीमा के नाते, उसे समाज को अधिक संयमी रहने का उपदेश करने के लिए आना चाहिए, शीघ्र शादी करने और विश्व में पतित रहकर मरना सिखाने के लिए नहीं। छोटी–छोटी बच्चियों को पति और छोटे–छोटे बच्चों को बीवियाँ प्रदान कर राष्ट्र के बलवान होने तथा बालक–बालिकाओं के ब्रह्मचारी होने की कल्पना, व्यभिचार से धन कमाकर मन्दिर बनवाने की कल्पना ही के समान हास्यास्पद है।

कुछ लोग कहते हैं कि हम सामाजिक सुधार की बात तो मानते हैं, परन्तु उसमें कानून का हस्तक्षेप नहीं चाहते। पहली बात तो यह कि जो लोग ब्रिटिश राज और उसके कानूनों की रक्षा के लिए मन्दिरों और मस्जिदों में प्रार्थना किया करते हैं और सदैव देश–घातकता का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष समर्थन किया करते हैं, उन्हें तो ऐसी 'राज–विद्रोही' बात अपने मुँह से नहीं निकालनी चाहिए कि हम सामाजिक मामलों में कानूनी हस्तक्षेप नहीं चाहते। वे वीराग्रणी स्वयं सुधार के प्रश्न के सुलझाने में लगे होते हैं और लगातार समाज के पाखण्ड और उसकी पतन–प्रवृत्ति से लड़कर समाज की सामाजिक, शारीरिक और आर्थिक अवस्था को लक्ष्य में रखकर सुधार किया करते हैं किन्तु जिन लोगों ने अपनी जिन्दगी में कभी खतरा आमन्त्रित नहीं किया और कानून से होने वाले सुधार के समय जो लोग पुकार कर कहते हैं कि हम कानून द्वारा भी सुधार नहीं चाहते, क्या उनका अप्रत्यक्षतः यह कहना नहीं है कि हम समाज को जैसे का तैसा रहने देना चाहते हैं? क्या ऐसे लोगों की सर्वनाशक उदासीनता के हाथों देश को सौंपा जा सकता है? कम से कम देश, समाज और धार्मिक भावों से सच्चा प्रेम करने वाला तथा भारत के उज्ज्वल और सबल भविष्य के लिए बेचैन भारतीय तरुण, ऐसे पाखण्डवाद का समर्थन नहीं कर सकता।

अजमेर के श्री हरविलास शारदा एम. एल. ए. ने असेम्बली में एक बिल पेश किया है जिसमें लड़कों और लड़कियों के विवाह की उम्र बढ़ाने की सूचना दी गयी है। पिछले दिनों, सरकार ने शारदा–बिल का विरोध किया था, किन्तु इस बार सरकार जान गयी कि राष्ट्रीय भारत, सरकार की एक न चलने देगा। महात्मा गांधी ने तो इस विषय में अपना स्पष्ट मत प्रगट करते हुए कहा है कि लड़की के विवाह की उम्र 18 वर्ष और लड़के के विवाह की उम्र 25 वर्ष होनी चाहिए। सम्मति–वय समिति ने विवाह की उम्र 14 वर्ष और संभोग की उम्र 15 वर्ष प्रगट की है। पण्डित मोतीलालजी नेहरू ने असेम्बली–सदस्यों से निवेदन किया है कि वे बाल–विवाह के राष्ट्रीय श्राप का चाहे तो खतरा सहकर भी गला घोंट दें।

स्वयं स्त्रियाँ क्या चाहती हैं? उन दुधमुँही बच्चियों को छोड़कर, जिन्हें 'पति' नामक शब्द का उचित अर्थ ही नहीं मालूम और उन बहिनों को छोड़कर जिन्हें शिक्षा से हमने उतनी ही दूर रखा है जितनी दूर पृथ्वी से आकाश है। देश की शिक्षित बहिनों ने शारदा–बिल का समर्थन

किया है। देश की अनेक स्त्री संस्थाओं ने शारदा–बिल के समर्थन में वाइसराय और प्रेसीडेण्ट पटेल को तार भेजे हैं। उन लोगों की तादाद बहुत थोड़ी है, जो छोटी बच्चियों के विवाह के व्यापार का समर्थन करते हैं। यह सन्तोष की बात है। हमारी यह इच्छा है कि पूर्ण शक्ति के साथ भारत की तरुण पीढ़ी, निर्भीकतापूर्वक इस सामाजिक सुधार का समर्थन करे और देश के भिन्न–भिन्न समाजों और संस्थाओं द्वारा श्री हरविलास शारदा के बिल का पृष्ठपोषण हो। देश की बालिकाओं, बहिनों और माताओं के भावी जीवन का यह तकाजा है। यह तकाजा है उनका जिनके 25 करोड़ के रूप में पतित पड़े रहने से भारत विश्व में बदनाम हो रहा है, और जिनके सबल होते ही नवीन भारत का निर्माण हो सकता है।

तुर्किस्तान की बहिनें राष्ट्रीय कार्य में हाथ बँटाने लगी। चीन की बालिकाओं ने बाल–विवाह के बन्धनों के खिलाफ विद्रोह किया जिसका शुभ परिणाम गत चीनी क्रान्ति के रूप में प्रगट हुआ। इधर महाराष्ट्र, बंगाल तथा अन्य स्थानों में लड़कियों का आसन, रूढ़ियों और मूर्खताओं में से उठकर विद्या और बल के बीचों बीच जा रहा है। किन्तु एक हम हैं जो बाल–विवाह की मूर्खता का समर्थन किये जा रहे हैं? हाँ यह सच है कि देश की तरूण पीढ़ी और देश के हितचिन्तक अब देश में रूढ़ियों का समर्थन नहीं होने देना चाहते। इसी से आशा है कि शारदा–बिल कानून बन जायगा और पूर्ण रूप से नहीं तो अंशतः लड़कियों का निर्दय बलिदान इस पुण्य भूमि कहे जाने वाले देश में रुक जायगा। आशा है, तरुण पीढ़ी इस सामाजिक बात के खिलाफ आवाज उठावेगी।[16] सवाल सिर्फ आयु का नहीं है बल्कि समाज में निर्णय लेने की क्षमता का होता पतन भी बाल विवाह की देन है। आयु के साथ में विवेक तथा बल दोनों बढ़ता है जिससे सामाजिक बदलाव लाया जा सकता है। इसलिए देश के युवाओं से एक नये आरूणोदय की कामना हैं।

देश में बदलाव की वयार को लेकर जब तक जन जागरण नहीं होगा तब तक जाग्रति नहीं आयेगी। बदलाव के लिए सबसे पहले पहल समाज के प्रबुद्ध जनों एवं तरूणों को करनी चाहिए जिससे एक सशक्त आंदोलन संघर्ष का रूप ले सके। संघर्ष को तब तक अमली जामा नहीं पहनाया जा सकता है जब तक उसमें बौद्धिक क्रान्ति न हो। देश की मिट्टी ने वीर सपूतों के साथ–साथ मूर्धन्य विद्वानों को भी जन्म दिया है, इसमें हिन्दी के प्रकाण्ड पंडितों की अविस्मरणीय भूमिका रही है। हिन्दी भाषीय क्षेत्रों में ऐसे ही एक विद्वान माखन लाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' का तेज उनके आरंभिक दिनों से अब तक बना हुआ है। ब्रिटिशकालीन भारत में व्याप्त सामाजिक असमानताये, राजनैतिक अस्थिरता, आर्थिक विषमता तथा सांस्कृतिक वैमनस्य पर उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से जन–जाग्रति की अलख जगायी। इन समस्याओं को लेकर उन्होनें गीत, कहानी, कविता, नाटक तथा निबंधों में विभिन्न बिम्ब प्रतीक तथा रूपकों के जरिये बदलाव लाने की सार्थक पहल की। एक अच्छे निबंधकार के साथ–साथ में प्रखर पत्रकार के तेबरों ने उन्हें एक उच्च कोटि के संघर्षकर्ता तथा ओजस्वी वक्ता बनाया। लेखन की सफलता को स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने बखूबी उल्लेखित किया जिसके कारण हम उन्हें एक क्रांतिकारी की संज्ञा भी देते हैं।

निष्कर्ष : माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी लेखनी के माध्यम से ब्रिटिशकालीन भारत एवं स्वतंत्रोत्तर काल में स्थानीय समाज में विद्यमान विषमताओं तथा असमानताओं का विरोध किया। उनके अनुसार सिर्फ राजनैतिक स्वतंत्रता ही सभ्य मानव की कसौटी नहीं है बल्कि जब तक समाज में बराबरी नहीं आ जाती, तब तक सही मायने में आजादी अधूरी है। इसलिए उनका लेखन कार्य समाज के केन्द्र में रहा एवं परिधि के रूप में समाज की प्रत्येक गैर बराबरी को उन्होंने अपने लेखन कार्य के माध्यम से उठाया। बात चाहे गरीबी, भूख, अकाल, शिक्षा, दहेज, बाल–विवाह, विधवा विवाह, जाति प्रथा, महिला सशक्तिकरण, नशा उन्मूलन की हो या किसानों की समस्याओं की उन्होंने सभी पर अपने विचार रखे। उनके लेखन का आवरण पूरा भारतीय

सामाजिक परिवेश है इसके साथ ही उन्होंने राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा देश–विदेश की विभिन्न समस्याओं पर भी लेखन कार्य किया। वह सामाजिक जीवन के एक सशक्त हस्ताक्षर होने के साथ–साथ एक सजीव भारतीय आत्मा भी है।

संदर्भ–

1. टंडन, प्रेमनारायण, माखनलाल चतुर्वेदी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, नंदन प्रकाषन, लखनऊ, 1970, पृ. 16.
2. जोशी, श्रीकान्त, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग–एक, वाणी प्रकाषन, नई दिल्ली, 1995 पृ. 163.
3. वही, पृ. 174.
4. जोषी, श्रीकान्त, माखनलाल चतुर्वेदी : यात्रा पुरूष, नेषनल पब्लिषिंग हाऊस, दिल्ली, 1968, पृ.18.
5. जोशी, श्रीकान्त, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग–दो, वाणी प्रकाषन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 17–18.
6. वही, पृ. 18.
7. वही, पृ. 19–20.
8. वही, पृ. 22–23.
9. वही, पृ. 37–38.
10. वही, पृ. 38–39.
11. वही, पृ. 42.
12. वही, पृ. 47.
13. वही, पृ. 52.
14. 'कर्मवीर', 5 सितम्बर, 1925.
15. 'कर्मवीर', 27 सितम्बर, 1920.
16. 'कर्मवीर', 14 सितम्बर, 1929.